

प्रगतिवाद एवं परवर्ति हिन्दी काव्य में रागात्मक विरेचन

सुमन बाला

Kurukshetra University, Kurukshetra, Haryana, India

प्रस्तावना

मानव या समाज के प्रति जो प्रेम प्रकट हुआ है, वह कहीं तो केवल बौद्धिक जान पड़ता है और कहीं वह कवि के रागात्मक हृदय का पारिचायक है। कोरे मॉस्को, लेनिन, लाल सेना आदि नामों के लेबिल से आतंकित करने वाली सोडावॉटरी जोश वाली साम्प्रदायिक कविताओं की अपेक्षा 'निराला' की 'तोड़ती पत्थर' जैसी कविताएँ दोनों के प्रति कवि-हृदय की सच्ची व मार्मिक वेदना की प्रकाशक है—

वह तोड़ती पत्थर;
देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर;
वह तोड़ती पत्थर।
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार बार प्रहार;
देखा मुझे उस दृष्टि से,
जो मार खा रोई नहीं;
एक छन के बाद वह काँपी सुधर,
दुलक माथे से गिरे सीकर;
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा,
"मैं तोड़ती पत्थर।"

—'निराला'¹

पंत जी की 'ग्राम्या' में 'ग्राम कवि', 'ग्राम', 'ग्राम-चित्र', 'कठपुतले', 'वे आँखें', 'गाँव के लड़के', 'वह बूढ़ा', 'मजदूरनी के प्रति' आदि कविताएँ कवि के व्यापक मानव प्रेम व सहानुभूति को सूचित करती हैं। 'अंचल' की 'किरणबेला' की 'रोती हो', 'दोपहर की बातें', 'वह मजदूर की अंधी लड़की' आदि कविताएँ भी इस दृष्टि से सुंदर हैं। श्री जगदीश गुप्त की 'गंगा के तट पर एक खेत',² व श्री चंद्रप्रकाश सिंह की 'चार महीने'³ जैसी कविताएँ भी दीनों के प्रति कवियों की मार्मिक सहानुभूति को व्यक्त करती हैं।

प्रगतिवाद के अंतर्गत पड़ने वाली कुछ उच्च कोटि की रचनाओं में नवीन मानव-प्रेम का जो उत्साह दिखाई पड़ा, वह निश्चित ही रति के क्षेत्र का नवीन विस्तार सूचित करता है। यों प्रगतिवाद के नाम पर चलने वाली सौ में से पचानवे कविताओं में कृत्रिम सांप्रदायिक जोश ही अधिक दिखाई पड़ता है, और साथ ही उनमें हार्दिकता की भी बेहद कमी दिखाई पड़ती है। उनकी सहानुभूति (बौद्धिक और फैशन के लिए) मानव-समाज के केवल एक वर्ग (श्रमिक) तक ही सीमित है, जो उनके व्यापक मानवीय दृष्टिकोण की सूचक नहीं। प्रेमचंद अपने उपन्यासों में इस दोष से मुक्त हैं। उनकी सहानुभूति गोदान के राय साहब तथा होरी इन दोनों के प्रति है। मानवता के नाते विशेष परिस्थितियों में, धनी-जमींदार सभी समान भाव से हमारी सहानुभूति के अधिकारी हो सकते हैं। अस्तु आत्मा या

ईश्वर का कोई स्थान न होने से प्रेम भी इन कवियों का पूर्ण पार्थिव ही है।

परंपरागत ईश्वर-प्रेम की तो चर्चा ही व्यर्थ है। अब वृन्दावन का रास भी स्थूल वासनाओं का प्रकाशन मात्र समझा जाता है—

ओ कलाकार !
यदि और न कुछ
तुम कर सकते
स्वप्नों का ही निर्माण करो !
पर ऐसे स्वप्न नहीं
जिनके वृन्दावन में
कुंजों में, यमुना के तट पर
खेलें खुल कर
वन्दिनी वासनाएं उर की !

—सिद्धनाथ कुमार।⁴

इन कवियों के लिए यौन-भावना एक हौवा नहीं। यह रोटी-पानी की तरह ही एक दैनिक आवश्यकता या प्राकृतिक क्षुधा है। उसकी अभिव्यक्ति भी ये लोग मुक्त कंठ से करते हैं। इन कवियों की दृष्टि में ऐसी अभिव्यक्ति कोई आपत्तिजनक नहीं—

(1) आओ नहायें

छत से फुहार झरे
खड़े रहे आँख मींच
कभी कभी चुपके से देखें, धुल रही धूल
थकी पिंडलियों की—
थके-थके एक दूसरे को उधरे देखें
और न शरमायें....

—सत्यप्रिय मित्र⁵

(2) आज सुहाग हरूँ मैं किसका, लूटूँ किसका यौवन,

किस परदेशी को बंदी कर सफल करूँ यह वेदन।

—'अंचल'⁶

(3) ठहर-ठहर आततायी ! जरा सुन ले

मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन जा !

—'अज्ञेय'⁷

(4) और वह दृढ़ पैर मेरा है,

गुरु, स्थिर, स्थाणु सा गड़ा हुआ

तेरी प्राण-पीठिका पै लिंग सा खड़ा हुआ।

—'अज्ञेय'⁸

(5) वह आएगी

मेरा ढाँप लेगी नंग
अपनी देह से
बहते स्नेह से।
—‘अज्ञेय’⁹

काम जीवन की ही एक वास्तविकता है, इसमें संदेह नहीं। जीवन और साहित्य में काम का स्थान व महत्त्व आज ही समझा-समझाया जा रहा हो, ऐसी बात नहीं। प्राचीन भारतीय साहित्य में इसका पूर्ण विशदतापूर्वक निरूपण हो चुका है।¹⁰ किंतु जीवन में वह किस रूप में और किस सीमा तक ही उचित समझा जा सकता है, इसका उत्तर पंत जी देंगे। निम्नलिखित पंक्तियों में काम के प्रति पंत जी की दृष्टि कितनी यथार्थ व परिष्कृत है—

धिक रे मनुष्य, तुम स्वच्छ स्वस्थ, निष्कल चुम्बन,
अंकित कर सकते नहीं, प्रिया के अधरों पर ?
मन में लज्जित, जन से शंकित, चुपके गोपन
तुम प्रेम प्रकट करते हो नारी से, कायर।
क्या गुह्य, क्षुद्र ही बना रहेगा, बुद्धिमान।
नर नारी का स्वाभाविक, स्वर्गिक आकर्षण।
—पंत¹¹

उक्त वाद में ऐसी कविताएँ भी दिखाई पड़ती हैं, जो अभिव्यक्ति के संयम व सादगी के कारण ही सुंदर बन पड़ी हैं—जैसे, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का ‘सुहागन की गीत’,¹² तथा गिरिजा कुमार माथुर की कविता ‘चूड़ी का टुकड़ा’। ‘चूड़ी का टुकड़ा’ एक संयत व मार्मिक रचना है—

आज अचानक सूनी-सी संध्या में
जब मैं यों ही मैले कपड़े देख रहा था
किसी काम में जी बहलाने
एक सिल्क के कुत्ते की सिलवट में लिपटा
गिरा रेशमी चूड़ी का छोटा-सा टुकड़ा
उन गोरी कलाईयों में जो तुम पहिनें थीं
रंग-भरी उस मिलन-रात में।¹³

नई कविता में शारीरिक सौंदर्य का चित्रण यथार्थवादी विचार-धारा से प्रेरित होकर ही किया जाता है। सौंदर्य का अलौकिकीकरण अथवा अध्यात्मीकरण करने का कोई प्रयास नहीं दिखाई पड़ता। बाहरी रूप-सौंदर्य अपने आप में एक ऐसी महत्त्वपूर्ण वस्तु है, जिसे रहस्य अथवा अध्यात्म की कोई अपेक्षा नहीं। साथ ही यह भी सत्य है कि प्रत्येक रूप-सौंदर्य-चित्रण के प्रयत्न में निम्न वासना ही उसकी मूलभूत प्रेरणा हो, ऐसी भी बात नहीं दिखाई पड़ती। अनेक चित्र शुद्ध रसात्मक होते हैं। लोक-कलाओं तथा ग्राम-जीवन की ओर अधिकाधिक ध्यान आकृष्ट होने के कारण ग्राम पात्रों के रूप-सौंदर्य का चित्रण अधिक उत्साह तथा सूक्ष्मता से किया जा रहा है। अन्ततः सौंदर्य अथवा शील का चित्रण भी यत्र-तत्र सुंदर रूप में प्राप्त होता है।

सौंदर्य की भावना भी उक्त काव्य की राजनीतिक तथा मनोविज्ञान-सम्मत विचारधारा के अनुरूप दिखाई पड़ती है। छायावाद की कविता में स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म के प्रति अत्यधिक मोह रहा। किंतु अब व्यापक जीवन-दृष्टि में परिवर्तन आ जाने के कारण यथार्थ का आग्रह बढ़ गया।

अप्सरा के सौंदर्य का गान करते-करते न अघाने वाले कवि पंत भी अब तो इस स्वर में गाने लगे—

इस धरती के रोम-रोम में भरी सहज सुंदरता,
इस की रज को छू प्रकाश बन मधुर, विनम्र निखरता।
पीले पत्ते, टूटी टहनी, छिलके, कंकर, पत्थर,
कूड़ा करकट सब कुछ भू पर लगता सार्थक, सुंदर।¹⁴
कवि धरती के प्रति अब इतना आकृष्ट है, कि अब

वह सलमे-सितारे से जड़े नीले परदे पीछे की सब निधियों को मानो यहीं पर देखना चाहता है पृथ्वी पर ही उतर आने का अनुनय कर रहा है—

देखो भू को ! जीव प्रसू को।
हरित भरित पल्लवित मर्मरित
कुंजित गुंजित कुसुमित भू को।¹⁵

इस प्रकार अब पार्थिव सौंदर्य या सौंधी मिट्टी का महत्त्व बढ़ चला। कवि की सौंदर्य-दृष्टि मानव व प्रकृति, दोनों ही क्षेत्रों में पहुँची दिखाई पड़ती है; प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति कदाचित्, कुछ अधिक उद्दीपन, दृष्य-चित्रण, वातावरण-निर्माण, अलंकार-विधान व प्रतीक-स्थापन आदि की दृष्टि से नवीन कविता में प्रकृति का बहुत समावेश है। एक चित्र, एक वातावरण, एक संवेदना या क्षण-विशेष की मनःस्थिति को अंकित करने में इन कवियों का कौशल अच्छा दिखाई पड़ता है। रीति-कालीन शट्-ऋतु-वर्णन या बारहमासा आदि के रूप में प्रकृति का वर्णन तो कहीं नहीं दिखाई पड़ता। हाँ, उद्दीपन के रूप में प्रकृति प्राचीन कविता की तरह ही अब भी अवश्य प्रयुक्त होती दिखाई पड़ रही है—

हर पत्ते पर है बूँद नई हर बूँद लिए प्रतिबिम्ब नया,
प्रतिबिम्ब तुम्हारे अंतर का अंकुर के उर में उतर गया,
भर गई स्नेह की मधु गगरी, गगरी के बादल बिखर
गये।¹⁶

प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से अनेक कविताएँ बहुत सुंदर हैं। श्री नेमिचन्द्र की “डूबती संध्या”,¹⁷ श्री ‘अज्ञेय’ की ‘हवाई यात्रा’ (हरी घास पर क्षण भर), ‘बदली के बाद’ (तार सप्तक), ‘शिशिर की राका निशा’ (तार सप्तक), ‘ये मेघ साहसिक सैलानी’,¹⁸ श्री भवानी प्रसाद मिश्र की ‘सतपुड़ा के जंगल’ (दूसरा सप्तक), श्री रघुबीर सहाय की ‘सायंकाल’ (दूसरा सप्तक), श्री जगदीश गुप्त की ‘गंगा के तट का एक खत’¹⁹ आदि कविताएँ प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से सुंदर हैं। श्री गिरिजाकुमार माथुर प्रकृति-चित्रण के द्वारा पृष्ठभूमि या वातावरण का निर्माण बहुत कौशलपूर्वक करते हैं। यथा—

सेमल की गरमीली हल्की रूई समान
जाड़ों की धूप खिली नीले आसमान में
झाड़ी-झुरमुटों से उठ लम्बे मैदान में।
रुखे पतझार-भरे जंगल के टीलों पर
काँप कर चलती समीर हेमंत की
लम्बी लहर-सी।²⁰
सुनी आधी रात
चाँद-कटोरे की सिकुड़ी कोरों से
मंद चाँदनी पीता लंबा कुहरा।
सिमट लिपट कर।²¹

इसी प्रकार उनकी 'पानी भरे बादल', 'क्वार्' की दोपहरी', 'भीगा दिन' (तार सप्तक), व 'ढाक वनी'²² आदि कविताएं उनके प्रकृति-प्रेम को सूचित करती हैं। रंगों के प्रति भी कवियों की दृष्टि पर्याप्त सजग दिखाई पड़ती है। श्री 'अज्ञेय' जी ने काली परती, भूरे ऊसर, तोता परी, गेहूँ के खेत तथा धानी रंग को बहुत ध्यान से देखा है। गिरिजाकुमार माथुर की रंग-भावना भी प्रशंसनीय है। जैसे—

रुक कर जाती हुई रात का
अंतिम छाँहो-भरा प्रहर है
श्वेत धुएँ से पतले नभ में
दूर झाँवरे पड़े हुए सोने से तारे
जगी हुई भारी पलकों से पहरा देते।²³

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति-सौंदर्य के प्रति कवियों की संवेदना पर्याप्त गहरी है। प्रकृति व मानव-हृदय का अनेक स्थलों पर अच्छा सामंजस्य दिखाई पड़ता है। सांकेतिक या प्रतीकात्मक चित्र बहुत सुंदर उतरे हैं। सामूहिक दृष्टि से विचार करने पर प्रगतिवाद में विचार का उत्कर्ष अधिक दिखाई पड़ता है, कला-शिल्प का कम। प्रगतिवादियों की अपेक्षा प्रयोगवादियों का ध्यान कला-गत सौंदर्य की ओर अधिक है। भाषा, अलंकार व छंद आदि के क्षेत्र में वे अनेक नवीनताएं उपस्थित कर रहे हैं। कला-गत-सौंदर्य पर क्रोचे के 'अभिव्यंजनावाद' जैसे विदेशीवादों का प्रभाव स्पष्टतया दिखाई पड़ रहा है।

निष्कर्ष

सबसे पहले भाषा को लें। प्रगतिवादी कवि भाषा की उतनी चिंता करते नहीं जान पड़ते जितने प्रयोगवादी कवि। प्रयोगवादियों ने भाव-विचार की पूर्ण प्रेशणीयता के उत्साह में शब्दों की व्याकरण-गत साधुता-असाधुता की भी चिंता छोड़ सी रखी है। जैसे, श्री गिरिजाकुमार माथुर को वातावरण को प्रस्तुत करने के लिए नाद-सौंदर्य की दृष्टि से 'सुनसान' शब्द अधिक व्यंजक जान पड़ता है। (पर, ऐसे प्रयोग पंत जी ने भी छायावाद में किए हैं—जैसे, अनिवर्चनीय के स्थान, पर अनिवर्च, हर-सिंगार के स्थान पर, सिंगार आदि।) प्रयोगवादी कवि भाषा में अनगढ़, देषज, व्यवहारिक, सरल, स्पष्ट व चलते शब्दों के प्रयोग के अधिक पक्षपाती रहे हैं।

संदर्भ सूची

1. "अपरा" की 'तोड़ती पत्थर' नामक कविता।
2. ('प्रतीक', जुलाई 1951)।
3. 'प्रतीक'; मार्च, 1951
4. 'प्रतीक', जुलाई 1951
5. ('प्रतीक', नवंबर, 1951 में 'स्नानघर में' नामक कविता।
6. 'अपराजिता'।
7. 'इत्यलम्' में आह्वान।
8. 'इत्यलम्' में आह्वान।
9. 'इत्यलम्' में 'आषाढस्य प्रथमे दिवसे' नामक कविता।
10. देखिये, बम्बई हिन्दी-साहित्य सम्मेलन (1939) का पं. चन्द्रबली पांडे का 'अभिभाषण'।
11. 'ग्राम्या' की 'द्वन्द्व प्रणय' नामक कविता।
12. 'प्रतीक', अप्रैल-मई, 1951
13. 'तार सप्तक' (1943); पृ0 19।
14. 'युगवाणी'; पृ0 29।
15. वही पृ0 19।

16. श्री हरिनारायण व्यास : 'वर्षा के बाद' नामक कविता (दूसरा सप्तक)
17. 'तार सप्तक' पृष्ठ 25-26।
18. 'प्रतीक'; सितम्बर, 1951।
19. 'प्रतीक'; जुलाई 51।
20. 'तार सप्तक' में कुतुब के खण्डहर' नामक कविता।
21. 'तार सप्तक' में 'रेडियम की छाया'।
22. 'समाज'; अगस्त, 54।
23. 'तार सप्तक'; पृ0 42।